

## राज्य स्वायत्तता और केन्द्र-राज्य सम्बन्ध

### सारांश

विश्व के किसी भी राज्य के शासन में संघवाद का विचार लगभग उसकी अपनी परिस्थितियों के अनुरूप निर्भर करता है। प्रत्येक राज्य अपनी परिस्थितियों के अनुरूप उही संघीय सूत्रों का अनुसरण करता है जो उसकी समस्याओं का अच्छे ढंग से निराकरण कर सके। इसलिए हम संघवाद के दोनों सिद्धान्तों (संघात्मक एवं एकात्मक) में किसी को भी आदर्श रूप में नहीं पाते।<sup>1</sup> भारतीय संविधान निर्माता भी इससे अछूते नहीं रहे और उन्होंने उन्हीं संघीय सूत्रों का अनुसरण किया जो देश की तात्कालिक परिस्थितियों के अनुरूप था तथा जो भविष्य में राष्ट्र की एकता और अखण्डता को बनाये रख सकता था। इसलिए उन्होंने उस समय के आदर्श संघों जैसे—अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और स्विट्जरलैण्ड के संविधानों से उन्हीं सूत्रों का चयन किया जो उन्हें अपने देश के समस्याओं के निराकरण के लिए उचित लगा।<sup>2</sup> इसके लिए उन्होंने 'चूज एण्ड पिक' की रणनीति अपनायी। इस प्रकार भारत का संविधान संघवाद के परम्परागत सिद्धान्तों से अलग हटकर एक नये स्वरूप को ग्रहण किया जिसे 'कामचलाऊ संघवाद' का नाम भी दिया जा सकता है।<sup>3</sup> इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संघवाद का स्वरूप अलग—अलग देशों में उनकी अपनी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यहाँ परिस्थितियों से तात्पर्य किसी देश की उन ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से है जिसका वह सामना कर रहा है।

**मुख्य शब्द :** संघवाद, संघात्मक संविधान, एकात्मक संविधान, राज्य स्वायत्तता, शक्तिशाली केन्द्र, संसदीय व्यवस्था, योजना आयोग, नीति आयोग।

### प्रस्तावना

जहाँ तक भारतीय संघीय चरित्र का स्वरूप है तो इस संदर्भ में डा० अम्बेडकर का मत है कि भारत का संविधान एकात्मक भी हो सकता है और संघीय भी। देश की सामान्य परिस्थितियों में यह एक संघीय संविधान के रूप में कार्य करेगा तथा संकट के समय यह एकात्मक संविधान के रूप में परिणत हो जाएगा। विश्व के किसी भी अन्य संविधान में इस तरह का अनोखा लचीलापन सम्भव नहीं है।<sup>4</sup> ऐसा भारत के निम्नलिखित परिस्थितियों के कारण सम्भव हो सका है :

प्रथम, भारत अंग्रेजी शासनकाल के दौरान लगभग सौ वर्षों तक केन्द्र के कठोर नियन्त्रण में रहा है। इस ऐतिहासिक परिवेश को बदलकर तत्काल नया परिवेश बनाना सम्भव नहीं था।

द्वितीय, भारत का एक लम्बा एवं विस्तृत इतिहास यह बताता है कि जब भी केन्द्र में दुर्बल सत्ता रही; तब—तब भारत की एकता व अखण्डता खतरे में पड़ी है। अतः नए भारत के लिए एक शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता थी।

तृतीय, भारत एक विकासशील देश है और उसे विकसित बनाने के लिए यह आवश्यक था कि राष्ट्रीय संसाधनों का नियन्त्रण केन्द्रीय सरकार के हाथों में रहे। क्योंकि जब तक केन्द्र को शक्तिशाली नहीं बनाया जाएगा तब तक भारत का आर्थिक विकास सुनिश्चित नहीं हो सकेगा।

इस प्रकार संविधान निर्माताओं ने इन अनुभवों के आधार पर भारतीय संविधान के अन्तर्गत केन्द्र को अधिक शक्तियाँ सौंपी।

वस्तुतः संविधान ने लागू होने से अब तक ठीक प्रकार से काम किया है। निःसंदेह प्रत्येक पीढ़ी का यह अधिकार है कि वह विश्व के तेजी से बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में तथा अपनी आवश्यकताओं के अनुसार संविधान के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण को विकसित करे।<sup>5</sup> सम्भवतः इसी कारण से भारत में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के पुनर्मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत राजमन्नार समिति रिपोर्ट (1971), आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव (1973) और पश्चिम बंगाल सरकार मसविदा (1977) हमें यह याद दिलाते हैं कि इस संदर्भ में सदैव एक नए दृष्टिकोण की मांग की जाती रही है।<sup>6</sup>



### गौरव कुमार श्रीवास्तव

सहायक प्राध्यापक,  
राजनीति विज्ञान विभाग,  
सेण्ट एण्ड्रयूज पी०जी०  
कालेज,  
गोरखपुर, उ.प्र., भारत

**संघवाद : राज्य स्वायत्तता की उठती मांग :**

भारतीय संघवाद की प्रकृति के विवेचनोपरान्त यह स्पष्ट है कि संविधान निर्माताओं ने संविधान के अन्तर्गत शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की थी। सन् 1950 में स्वीकृत संविधान का स्वरूप संधीय होते हुए भी इसमें एकात्मक व्यवस्था की अनेक विशेषताएं थीं।

संविधान के उद्धाटन के तुरन्त बाद मार्च, 1950 में योजना आयोग की स्थापना हुई। योजना का क्षेत्र जितना अधिक केन्द्रीकरण के पक्ष में होता गया शिक्षा, समाज कल्याण और सामुदायिक विकास जैसी गतिविधियाँ वास्तविक अर्थों में केन्द्रीय विषय बनता गया।<sup>7</sup> वस्तुतः वह रक्षा को छोड़कर प्रशासन के सभी क्षेत्रों में भावी विकास का प्रमुख निर्णायक बन गया। सिद्धान्तः यह एक परामर्शदात्री संस्था थी किंतु व्यवहार में इसने संविधान और शासन दोनों को ही विशेष रूप से प्रभावित किया।<sup>8</sup>

केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति और अधिक सबल हुई, इसका सीधा कारण यह था कि 1950 से 1967 तक के समय में कांग्रेस पार्टी केन्द्र तथा राज्यों में लगातार सत्तारूढ़ रही।<sup>9</sup> केन्द्र तथा राज्यों के बीच जो भी मतभेद तथा विवाद उत्पन्न हुए उन्हे दो सरकारों के बीच नहीं बल्कि एक ही राजनीतिक पार्टी के दो पक्षों के बीच उत्पन्न हुए विवाद को समझकर सुलझा दिया गया।<sup>10</sup> यह प्रक्रिया इस कारण और भी सरल हो गई थी कि प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को जितनी अधिक व्यक्तिगत सत्ता प्राप्त थी उसके सामने सभी राज्यों के मुख्यमंत्री निष्प्रभ होकर रह गये थे।<sup>11</sup>

नेहरू के मृत्यु के साथ ही कांग्रेस पार्टी में हुए गम्भीर मतभेदों तथा विभाजनों के कारण नेतृत्व, दलीय ढाँचे के अन्दर ही केन्द्र-राज्य विवादों को सुलझाने में असमर्थ हो गया।<sup>12</sup> संसदीय व्यवस्था भी उन सभी समस्याओं को सामने ले आयी जिनका सामना अनेकताओं से परिपूर्ण एक विशाल देश को करना ही पड़ता है; यदि वह अपने यहाँ एक केन्द्रीकृत प्रशासन लागू करना चाहता है। इस प्रकार केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में गम्भीर तनावों ने जन्म लिया स्थिति और अधिक गम्भीर तब हुई जब अनेक राज्यों ने यह महसूस किया कि उन्हे केन्द्र द्वारा निर्धारित संसाधनों का उचित हिस्सा नहीं मिल रहा है।

1967 के आम चुनावों ने परिवर्तनों के प्रारम्भ की घोषणा की।<sup>13</sup> यद्यपि घटे हुए बहुमत के साथ कांग्रेस केन्द्र में वापस आयी तथापि 14 राज्यों में से 7 राज्यों में गैर-कांग्रेसी राजनीतिक दलों ने सरकारें बनायी थीं। केन्द्रीकरण के विरुद्ध प्रान्तीय स्वायत्तता के प्रश्न को व्यापक चर्चा का विषय बन जाने में देर न लगी। तत्पश्चात् तीव्र रूप से स्वायत्तता की माँगों ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में संविधान के संधीय चरित्र में उपस्थित कुछ दोषों के कारण तीव्र विवादों को जन्म दिया।

**भारतीय संघवाद के अन्तर्गत राज्य स्वायत्तता**

राज्य स्वायत्तता की मांग भारतीय संघवाद का एक बड़ा ही विवादास्पद मुद्दा रहा है।<sup>14</sup> यह एक ऐसा मुद्दा रहा है जिसके पक्ष-विपक्ष पर अब तक दीर्घकालिक बहस हो चुकी है।<sup>15</sup> साथ ही इस संदर्भ में सबसे

महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यहाँ राज्य स्वायत्तता से क्या अर्थ लिया जाना चाहिए? यहाँ राज्य स्वायत्तता का तात्पर्य स्वतंत्रता या सम्प्रभुता (संघ से अलग होना) से नहीं है बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि राज्यों के आन्तरिक मामलों में केन्द्रीय सरकार का हस्तक्षेप कम से कम हो तथा संविधान द्वारा प्रदत्त विषयों पर उन्हें निरपेक्ष सत्ता के प्रयोग का अधिकार हो।<sup>16</sup> राज्यों को अपने कार्यक्षेत्र में पूर्ण स्वायत्त बनाया जाए ताकि वे जनकल्याण के कार्यों का क्रियान्वयन अपनी योजनाओं और विचारों के अनुसार स्वतंत्र और निर्बाध रूप से कर सकें। यह स्वायत्तता वित्तीय क्षेत्र में लगभग पूरी हो। केन्द्र की राजनीतिक और प्रशासनिक शक्तियाँ भी न्यूनतम रहें। केन्द्र का कार्य विदेश सम्बन्ध, रक्षा, मुद्रा, जनसंचार विषयों तक सीमित कर दिया जाए। इसकी कराधान शक्ति मात्र इतनी हो जिससे वह इन कार्यों के लिए प्रयोग्य साधन जुटा सकने में समर्थ हो। केन्द्र को सबल रखते हुए भी राज्यों को राज्यों की इतनी वित्तीय शक्ति प्रदान की जाए जिससे वे संसाधनों के अभाव में अपने को असहाय और अप्रभावशाली महसूस न करे।<sup>17</sup>

इस प्रकार राज्य स्वायत्तता का अर्थ न तो राज्यों की स्वतंत्रता से है और न सम्प्रभुता से। अपितु यह एक ऐसा वैधानिक दर्जा है जिसमें राज्यों को कुछ निर्दिष्ट क्षेत्रों में पूर्ण स्वतंत्रता तथा कम से कम केन्द्रीय हस्तक्षेप का आश्वासन प्राप्त होता है।<sup>18</sup> अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय संघवाद के अन्तर्गत राज्य स्वायत्तता का निहतार्थ संविधान द्वारा प्रदत्त राज्यों के अधिकार क्षेत्रों में कम में कम केन्द्रीय हस्तक्षेप से है। राज्यों को उनके अपने अधिकार क्षेत्रों में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने की शक्ति ही स्वायत्तता है।<sup>19</sup> इस प्रकार स्वायत्तता का तात्पर्य 'स्टेट राइट्स' से है जो कि संधीय व्यवस्था की रीढ़ होती है। राज्य स्वायत्तता से सम्बन्धित एक प्रश्न यह भी हमारे सामने आता है कि किस प्रकार से राज्य विधानमण्डल और राज्य सरकारें व्यवहार में स्वायत्तता का उपयोग करती हैं, जो उन्हें संविधान के अन्तर्गत सिद्धान्तः प्राप्त है। इस प्रश्न का उत्तर इस तथ्य पर आधारित है कि कोई भी संविधान कितना प्रभावशाली ढग से कार्य कर रहा है। साथ ही संविधान के प्रभावकरण के अतिरिक्त स्वायत्तता को प्रभावित करने वालों महत्वपूर्ण कारकों में राजनीतिक व्यवस्था विशेषतः राजनीतिक दल प्रणाली का विशेष स्थान है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से भारत में बहुत वर्षों तक एकदलीय प्रभुत्व रहा। ऐसी स्थिति में राज्य स्वायत्तता का मामला दबा रहा या कभी राजनीतिक संकट के रूप में सामने उभर कर नहीं आया किन्तु जब-जब केन्द्र और राज्यों में अलग-अलग राजनीतिक दलों की सरकारें रहीं तब-तब यह न केवल जवलंत बिन्दु बना अपितु इसे आवश्यक समझा गया।

उपरोक्त के अतिरिक्त स्वायत्तता को सच्चे अर्थों में 'वास्तविक' होना चाहिए। किन्तु वर्तमान समय में संविधान के कार्यकरण से ऐसा प्रतीत होता है कि इस महत्वपूर्ण तथ्य को लगभग भुला दिया गया है। आज भी लगभग सभी राज्यमंत्री केन्द्र द्वारा नामनिर्देशित किये जाते हैं। वर्तमान समय में योजना आयोग तो भंग हो चुका है,

पुंछी कमीशन की संस्तुतियां प्रस्तुत हो चुकी हैं फिर भी राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता संविधान के अन्तर्गत कम नहीं है। इस प्रकार जब तक राज्यों को राजस्व के और अधिक स्रोत नहीं दे दिये जाते तब तक वे वित आयोग की दया पर निर्भर रहेंगे और दलीय राजनीति में पिसते रहेंगे।<sup>20</sup>

### **संविधान के अन्तर्गत स्वायत्तता की सीमा**

भारतीय संविधान का अध्ययन यह बताता है कि यह सच्चे अर्थों में संघ नहीं है। वास्तव में हमारे संविधान का स्वरूप उप-पूरक संघीय सिद्धान्तों का है<sup>21</sup> इसके कई स्पष्ट उदाहरण लिए जा सकते हैं। संविधान में अवशिष्ट शक्तियों का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है तथा जिस पर केन्द्र का व्यापक क्षेत्राधिकार है। अनुच्छेद 356 और 365 केन्द्र सरकार को किसी भी राज्य सरकार के शासन क्षेत्र को अपने अधिनस्थ करने का अधिकार देता है। इसके अतिरिक्त प्रशासकीय मामलों में अनुच्छेद 256 और 257 के अधीन संघीय कार्यपालिका को राज्यों को निर्देश देने का अधिकार दिया गया है; जिसके अनुपालन के लिए राज्य बाध्य हैं। इस प्रकार के अनुच्छेदों का अमेरिका, स्विटजरलैण्ड, कनाडा और आस्ट्रेलिया अथवा किसी अन्य संघीय संविधान में कोई उल्लेख नहीं है। इस प्रकार प्रशासनिक क्षेत्र में अनुच्छेद-256, 257 और 365 केन्द्र को शावितशाली रिथिति प्रदान करते हैं।

इसी प्रकार कानून और व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में अनु० 247 द्वारा संसद किसी भी अतिरिक्त न्यायालय की नियमानुसार स्थापना कर राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप कर सकती है। कुल मिलाकर देखें तो रिथिति यह है कि प्रशासन, कानून और व्यवस्था के मामलों में केन्द्र ही निर्णयक, अभिनिर्णयक और अभियोजक तीनों ही है।<sup>22</sup>

उपरोक्त के अतिरिक्त यह तथ्य विधिमान्य है कि विखण्डनशील प्रवृत्तियों के संदर्भ में राजनीतिक रूप से एक सुदृढ़ एवं शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता है और यह प्रवृत्ति हमारा संविधान अपने स्वरूप में प्रदर्शित भी करता है। समय की यह मांग है कि राजनीतिक रूप से निर्दिष्ट दायरों में केन्द्रीकरण हो किन्तु आर्थिक रूप से विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा दिया जाए। आर्थिक क्षेत्र में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के मध्य आर्थिक स्रोतों के पुनर्वितरण पर पुनर्विलोकन की आवश्यकता है। इस तथ्य की पुष्टि सरकारिया कमीशन एवं पुंछी कमीशन की संस्तुतियों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण के पहले कदम के रूप में योजना आयोग को समाप्त करना था। (वर्तमान में केन्द्र में सत्तारूढ़ भाजपा सरकार ने योजना आयोग को भंग कर नीति आयोग की स्थापना की है।) इसके अतिरिक्त वित आयोग को सम्पूर्ण संसाधनों की समीक्षा हेतु प्राधिकृत करने तथा सभी संसाधनों के उपयोग को इष्टतम बनाने के लिए कई समग्र योजना की रूपरेखा तैयार करने की अनुपात होनी चाहिए। सरकार को वित आयोग द्वारा प्रस्तुत की गयी सिफारिशों को अपरिहार्य अधिनिर्णय मानना चाहिए।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण के लिए दूसरा उपाय संघ सरकार द्वारा एक न्यास आयोग की स्थापना करना है।

जिससे कि ऋण नीति केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की राजनीति से अलग रहे।

वर्तमान समय में योजना आयोग समाप्त हो चुका है फलस्वरूप आर्थिक विकेन्द्रीकरण के लिए केन्द्र की उद्योगों के सम्बन्ध में लाइसेंसिंग शक्तियों<sup>23</sup> में कुछ आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

सूखा, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में राज्यों को अनुदान देने की परम्परा समाप्त की जानी चाहिए। केन्द्र के अकाल राहत कोष के स्थान पर राज्य कल्याण कोष होना चाहिए। इसके साथ ही साथ वित्तीय संसाधनों को केन्द्र-राज्य हिस्सेदारी के आधार पर संशोधित किया जाना चाहिए। संविधान के अनु०-269 में उल्लिखित सभी करों की जाँच वित आयोग की संस्तुतियों के आधार पर प्रारम्भ की जानी चाहिए।

### **अध्ययन का उद्देश्य**

1. भारतीय संघीय स्वरूप की विवेचना करना।
2. उन ऐतिहासिक परिस्थितियों का विश्लेषण करना जिनके कारण संविधान निर्माताओं ने एक शक्तिशाली केंद्र की स्थापना संविधान के माध्यम से की।
3. समय-समय पर राज्य स्वायत्तता की उठती मांगों का विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करना।
4. भारतीय संविधान के अन्तर्गत राज्य स्वायत्तता की सीमाओं का उल्लेख करना।

### **निष्कर्ष**

इस प्रकार उपर्युक्त सभी उपाय समेकित तथा संतुलित आर्थिक विकास हेतु स्थानीय उपायों के फलीभूत होने और अधिक राष्ट्रीयता की मानसिकता वाले राज्य के नेतृत्व के लिए आवश्यक है। संसाधनों के लिए केन्द्र के साथ छीना-झपटी से राज्य नेतृत्व में जी-हजारी और विवशता की मानसिकता उत्पन्न होती है। साथ ही इससे अन्तर्राजीयी छोटे-मोटे विवाद और विद्वेष उत्पन्न होते हैं। यदि भारत को महाशक्ति बनाना है तो इन अन्तर्राजीयी मतभेदों को दूर करना होगा। क्रमिक आर्थिक विकास के लिए आर्थिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण अवश्य किया जाना चाहिए। यदि सरकारिया आयोग और पुंछी आयोग की संस्तुतियों का सही ढग से क्रियान्वयन हो सके तो हम निश्चित रूप से एक सुदृढ़ एवं समृद्ध भारत की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

### **अंत टिप्पणी**

1. पाल, चन्द्र : स्टेट अटॉनमी इन इण्डियन फेडरेशन, दीप दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1984 पृ०-35
2. वही, पृ०-36
3. चटर्जी, पी० एन० : द प्राब्लम ऑफ यूनियन ऑफ द स्टेट्स ऑफ इण्डिया, मार्डन लॉ रिब्यू, 1971, प० 178
4. जेनिंग्स, आइवर : कॉस्टीट्यूशनल लॉ ऑफ द कॉमनवेल्थ, क्लैरडन प्रेस, आक्सफोर्ड, (तीसरा संस्करण), 1957, प०-267-268,
5. पाल, चन्द्र : स्टेट अटॉनमी इन इण्डियन फेडरेशन, प०-78,

## Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

6. टम्स एण्ड सिफेंस ऑफ द सरकारिया कमीशन : मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स (नो० न०-IV/11017/1/83-सी०एस०आर०) ९ जून, १९८३.
7. मैथ्यूकुरियन, को० एवं वर्गीस, पी० एन० : केन्द्र-राज्य सम्बन्ध, मैकमिलन, १९८०, पृ०-०२
8. फडिया, बी० एल० : स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया, रेडियन्ट पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १९८४, पृ०-३७५.
9. राजशेखरीया, ए० एम०सेंटर- स्टेट रिलेशन्स इन इण्डिया : डिमांड फॉर स्टेट अटॉनमी, पृ०- १६९
10. मैथ्यूकुरियन, को० एवं वर्गीस, पी० एन०: केन्द्र-राज्य सम्बन्ध, मैकमिलन, पृ०-२
11. वही, पृ०-०२-०३,
12. त्रिवेदी, आर०एन० एवं राय, एम० पी० : भारतीय सरकार एवं राजनीति, कॉलेज बुक डिपो, आगरा, १९९७, पृ०- २४५
13. मैथ्यूकुरियन एवं वर्गीस : केन्द्र-राज्य सम्बन्ध, पृ० २-३
14. पाल, चन्द्र : द प्राल्लम ऑफ स्टेट अटॉनमी : इमर्जिंग ट्रेन्ड्स कोच्चि युनिवर्सिटी लॉ रिभ्यू, १९८१, पृ० ३३२-३३४.
15. जैन, गिरि लाल : आस्किंग फार मोर अटॉनमी: इनिविटेबल वीकनिंग ऑफ सेंटर, टाइम्स ऑफ इण्डिया, ७ दिसम्बर, १९७७, पृ०-६
16. फडिया, बी०एल० : स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया, पृ०-१९१.
17. राव, को०सी० : पार्लियामेंटी डिसोक्रेसी इन इण्डिया, कलकत्ता वर्ल्ड प्रेस, १९६५, पृ०-३११
18. लाल, राम जी : स्टेट अटॉनमी एंड इट्स इमर्जिंग ट्रेन्ड्स, विरेन्न ग्रोवर (सम्पाद) : पॉलिटिकल सिस्टम इन इण्डिया, वाल्यूम-IV, १९८९, पृ०-१८८
19. फडिया, बी० एल० : स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया, पृ० १९१
20. कॉल फॉर न्यू लुक टाइज़ विद सेन्टर : टाइम्स ऑफ इण्डिया, २२ मार्च, १९८३, पृ०-१
21. स्वामी, सब्रहमण्यम : स्वायत्तता किस सीमा तक, सी० को० जैन (सम्पाद) : कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, लोकसभा सेक्रेटेऱ, १९९२, पृ०-१७९.
22. वही, पृ०-१८०-१८१.
23. संघ सूची की प्रविष्टि-५२ यह अभिनिर्धारित करती है कि वे उद्योग जिनके सम्बन्ध में संसद ने विधि द्वारा घोषणा की है उन पर संघ का नियंत्रण लोकहित में समीचीन है। (भारतीय संविधान अनु०-२४६)